Bodhi-Path Year 2022 January Issue Volume 22 Page No 14-20

बौद्ध दृष्टिकोण मे पूर्वजन्म एवं अपरजन्मः एक समीक्षा

-Sanjib Kumar Das*

भूमिका

''पूर्वजन्म एवं अपरजन्म'' की व्यवस्था केवल एक सिद्धान्त ही नहीं है, अपितु एक परीक्षा का विषय भी है। इसके अस्तित्व पर विश्वास एक आधारभूत मतवाद पैदा करता है। इसकी व्यवस्था बौद्धों के लिए एक चुनौतिपूर्ण एवं गम्भीर विषय है क्योंकि कर्मफल, चार आर्यसत्य, आर्य अष्टांगिक मार्ग, मोक्ष आदि की व्यवस्था भी पूर्णतः इसी से जुड़ी हुई है। इस ''पूर्वजन्म एवं परजन्म'' के अस्तित्व को नहीं मानने से कर्मफल, चार आर्यसत्य, मोक्ष आदि की अवधारणा व्यर्थ हो जाता है। यद्यपि पूर्वजन्म के अस्तित्व को सत्य प्रमाणित करना सम्भव है, परन्तु सही मायने में वह आसान भी नहीं है। मन का स्वभाव ऐसा है जो अधिकांश लोगों को उनके पूर्वजन्म को स्मरण करने का अवसर प्रदान नहीं करता है। वर्तमान में हमारा मन अनेक आवरणों से आवृत है। उनमें से छः क्लेश या अनुशय प्रमुख हैं।[1] वे छः क्लेश ही इस संसार के मूल कारण है। इन छः अनुशयों के कारण ही हम पूर्वजन्म एवं अपरजन्म के अस्तित्व को यथावत् जानमें में समर्थ नहीं होते हैं। जैसे एक आयना जब गन्दगी से लिप्त रहता है, हम कुछ भी स्पष्ट नहीं देख पाते हैं, ठीक उसी तरह क्लेश रूपी मल से आवृत मन पूर्वजन्म के अस्तित्व को से अवगत होने की अनुमति नहीं देता है। इसके अतिरिक्त मृत्यु आदि के भय भी सत्व को पूर्वजन्म की बातों को भूल जाने पर विवश कर देता है।

प्राच्य दृष्टि, बौद्ध, जैन आदि समस्त दर्शन पुनर्जन्म को मानते हैं, परन्तु बौद्धों के अतिरिक्त सभी दर्शन नित्य एवं कूटस्थ आत्मा को मानकर चलते हैं। उनके अनुसार जो नरक में पैदा होगा वही स्वर्ग, तिर्यक्, प्रेत आदि विभिन्न योनियों में पैदा होगा। बौद्ध नित्य आत्मा न मानकर चित्त–सन्तति की प्रवाहमय को मानते हैं। इसलिए जो नरक में पैदा होता है, वही स्वर्ग में पैदा नहीं होता, अपितु उसी की सन्तति पैदा होती है। जैसे मेरा बाल्यकाल मेरी युवावस्था नहीं है। मेरे बाल्यकाल का कोमल शरीर युवावस्था में नहीं रहता है। युवावस्था वृद्धावस्था में नहीं होती, लेकिन उसी शिशु की सन्तति निरन्तर प्रवाहमय भिन्न–भिन्न कर्मों को करते हुए भिन्न अवस्थाओं से गुजरती है।

तिब्बती भाषा में एक कहावत् है जिसका अनुवाद ऐसा होगाः ''आपने पूर्व में क्या किया था यह जानने के लिए अपने शरीर को देखें; भविष्य में क्या होगा यह जानने के लिए अपने कर्म को देखें।'' सम्भवतः पूर्वजन्म एवं अपरजन्म के अस्तित्व का सारार्थ इन्हीं दो पंक्तियों में निहित है।

पूर्वजन्म का अस्तित्व

सर्वविदित है कि मनुष्य का व्यक्तित्व शरीर और चित्त से बना है। इन दोनों में चित्त ही प्रधान है। एक प्रकार से चित्त शरीर का स्वामी है। इसलिए शारीरिक सुख–दुःख का भोग बहुत कुछ चित्त के ऊपर ही निर्भर करता है।[2] भोग–विलास के साधनों को संचित करना, उसके लिए अनेक

* संजीव कुमार दास, प्रोफेसर, भारत–भोट अध्ययन विभाग, विश्व–भारती विश्वविद्यालय, शान्तिनिकेतन–731235, पश्चिम बंगाल।

[1] द्र0 मूलं भवस्यानुशयाः षड्रागः प्रतिघस्तथा। मानोऽविद्या च दृष्टिश्च विचिकित्सा च ते पुनः।। **अभिधर्मकोशः,** 5:1।।

[2] द्र0 मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया। मनसा चे पसन्नेन भासति वा करोति वा। ततोनं सुखमन्वेति छाया'व अनपायिनी।।, **धम्मपद,** 1:2।।

कष्टों को सहने के लिए तत्पर रहना, संचित साधनों को उत्तरोत्तर बढ़ाते जाने की उत्कट अभिलाषा रखना, उनको अनेकानेक विघ्नों से सुरक्षित रखना, इन सब कार्यों के लिए मित्रवर्ग एवं शत्रुवर्ग खड़ा करके राग–द्वेष की एक परम्परा खड़ी कर लेना, ये सब वृत्तियां मानसिक घात–प्रतिघात से ही उत्पन्न होता है। इसप्रकार मनुष्य जीवन में चित्त की ही प्रधानता है।

बौद्धधर्म के अनुसार मनुष्य का अर्थ पंच मानव–स्कन्ध[3] के समुच्चय पर प्रज्ञप्त पुरुष। ये पंच स्कन्ध अनित्य है क्योंकि वे परिवर्तनशील हैं। वे परिवर्तनशील हैं क्योंकि वह हेतु एवं प्रत्ययों से बने हैं। परिवर्तनशील या नश्वर होते हुए भी मनुष्य उसके प्रति आसक्त होकर इसकी रक्षा करने के लिए जीवन में नानाप्रकार के अकुशल कर्म करता रहता है। वह इससे परिचित एवं सचेतन नहीं कि उसका वर्तमान जीवन ही सब कुछ नहीं है। इसी जीवन को सुखी और सम्पन्न बना लेने में कर्तव्य समाप्त नहीं हो जाता। अनागत जन्मों में सुख प्राप्ति करने के लिए एवं दुःखों का परिहार करने के लिए हमें उपाय खोजने होगें।

जगत् में विद्यमान सभी ज्ञेयधर्म रूप, ज्ञान एवं विप्रयुक्तसंस्कार में अन्तर्भुक्त होते हैं अथवा पंच स्कन्ध, यथा– रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान में संगृहीत है। दूसरे शब्दों में प्राणियों में रूप स्कन्ध एवं ज्ञान स्कन्ध नामक दो स्कन्ध होते हैं। उनमें से वर्ण संस्थान आदि से युक्त महाभूतकाय तो परमाणुओं से निर्मित है। उस धारा का हेतु भी माता–पिता के शुक्राणु एवं शोणित आदि है। अपने माता–पिता के दोनों काय भी अपने–अपने अन्य माता–पिता तथा अन्य काय के शुक्राणु से उद्भुत हैं। इसप्रकार इस काय की एक से अन्य में बहती पूर्व–पूर्व धारा कहाँ से आई, इसका परीक्षण करते समय यह परम्परा क्रमशः अनादि सिद्ध होती है। आर्यदेव ने कहा है, ''जब एक पदार्थ का ही आदि हेतु दिखाई नहीं देता है तब एक के इस विस्तार का दर्शन होने पर भय कैसे नहीं होगा?[4]'' इसी तरह वर्ण एवं संस्थान आदि रूप में असिद्ध अपने इस जन्म के ज्ञानों का भी निश्चय ही अपनी समान परम्परा वाली पूर्व धारा से ही उत्पन्न होना चाहिए। परमाणु से निष्पन्न काय कथमपि इस जन्म के विज्ञान का उपादान नहीं हो सकता है। धर्मकीर्ति ने कहा है, ''जन्म का परिग्रहण होने पर श्वास–प्रश्वास, इन्द्रिय, चित्त आदि अपने सजातीय आश्रय के विना केवल काय से ही उत्पन्न नहीं है।''[5] और भी, ''विज्ञान के उपादान विज्ञान के अतिरिक्त जड़ आदि नहीं होते– इसके कारण भी सिद्ध हैं।''[6]

अतः यदि वह चित्त है तो, उसका उपादान हेतु पूर्व चित्त होना चाहिए; जैसे कि वर्तमान चित्त। अपने इस जीवन का सर्वप्रथम चित्त भी चित्त होने के कारण अपने पूर्वगामी चित्त से उत्पन्न होना चाहिए। विज्ञान के अतिरिक्त जड़ पदार्थ चित्त के उपादान हेतु होकर चित्त के रूप में परिवर्तित नहीं हो सकते। अतः निश्चित रूप से विज्ञान का उपादान पूर्वगामी विज्ञान ही होना चाहिए। इसलिए इस जन्म के अपने विज्ञान का भी उपादान पूर्व का विज्ञान अवश्य होता है। यदि विज्ञान अपने समान जातीय पूर्व के विज्ञान से उत्पन्न नहीं होकर मात्र भूतकाय से उत्पन्न हुआ होता तो, मैत्री, करुणा, प्रज्ञा, राग, द्वेष आदि जो चित्त की विशेषताएं हैं, उनका भूतकाय के वृद्धि एवं क्षय से वृद्धि एवं क्षय होना चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं होता है। ये तो अपने चित्त के पूर्व अभ्यास की विशेषता के कारण वृद्धि एवं क्षय को प्राप्त होते हैं।

इसप्रकार चित्त की उस धारा में माता–पिता के चित्त का कुछ अंश हमारे चित्त में परिवर्तित होता है तो, माता–पिता के कुशल शिल्पी आदि होने पर पुत्र को भी वैसा होना चाहिए।

---

[3] रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान।

[4] यदैकस्यापि कार्यस्य दृश्यते नादिकारणम्। तदा कस्य भयं न स्याद् दृष्ट्वैकस्यापि विस्तरम्।।, **चतुःशतकम्,** 7:10।।

[5] प्राणापानेन्द्रियधियां देहादेव न केवलात्। सजातिनिरपेक्षाणां जन्म जन्मपरिग्रहे।।, **प्रमाणवार्तिक**, 1:37।।

[6] अविज्ञानस्य विज्ञानानुपादानच्च सिध्यति।।, **प्रमाणवार्तिक**, 1:166।।

एक ही माता–पिता की सन्तति होने पर विचारों की भिन्नता आदि भी नहीं होना चाहिए था। आचार्य धर्मोत्तर ने 'परलोकसिद्धि' में कहा है, ''क्योंकि चित्त के पूर्वगामी होने पर पूत्र का चित्त माँ के चित्त से उत्पन्न है, ऐसा कहना भी समीचीन नहीं है। तीक्ष्ण प्रज्ञा का होना तो पूर्व के अभ्यास के अनुसरण एवं प्रवृत्ति हेतु से होता है।[7] अतः अन्य माता–पिता के चित्त अथवा जड़ हेतु से प्रज्ञा आदि की उत्पत्ति को प्रदर्शित नहीं किया जा सकता। एक माँ से उत्पन्न होने के कारण रूप एवं यौवन आदि समान होने पर भी पुत्र तीक्ष्ण बुद्धि का होता है, किन्तु अन्य ऐसा नहीं होता।''[8]

यहाँ एक प्रश्न उठता है कि चित्त का शरीर के साथ उपादान एवं उपादेय सम्बन्ध नहीं है तो शरीर के साथ चित्त के सम्बन्ध का कारण क्या है? कर्म ही कारण है। पूर्व जन्म के कर्मों के फलस्वरूप इस जन्म के चित्त एवं शरीर का सम्बन्ध स्थापित होता है। कर्म चेतना स्वभाव है। वह कर्म–चेतना पूर्व जन्म में किये गये अच्छे या बुरे सभी का प्रतिनिधि है। इसलिए उसी के द्वारा चित्त एवं शरीर के सम्बन्ध स्थापित करते हैं, तभी देखा जाता है कि सद्य उत्पन्न मानव शिशु एवं गाय का बछड़ा आदि पैदा होते ही बिना दिखाए स्वयं ही पूर्व के अभ्यासवश भोजन–पान की खोज करना, राग–द्वेष आदि से प्रेरित होकर अनेकानेक तदनुकूल व्यापार करने लगते हैं। बच्चे शिशु अवस्था में ही जन्मजात गुणों से भिन्न–भिन्न दिखाई देते हैं। निश्चय ही ये सब प्रवृत्तियां पूर्व अभ्यास का ही फल होना चाहिए।[9] आचार्य भावविवेक ने 'मध्यमकहृदय' में कहा है, ''बछड़ा भी पूर्व के अभ्यास की वजह से पैदा होते ही भोजन खोजता है। इस तरह इस जन्म के चित्त में चित्त की धारा का पूर्वगामित्व सिद्ध कर पूर्वजन्म के चित्त का होना सिद्ध किया जाता है। इसी तरह पूर्वजन्म के चित्त की सन्तति भी चित्तपूर्वगामी होना चाहिए। अतः स्व–पर सभी के चित्त अनादि होने से जन्म भी अनादि सिद्ध होते हैं।[10]

वैसे भी देखा जाय तो किसी वस्तु का प्रत्यक्ष न होना मात्र उस वस्तु के अस्तित्व के अभाव को सिद्ध नहीं करता है। फिर आज के वैज्ञानिक युग में तो ऐसा कहना और भी हास्यास्पद है, जबकि प्रतिदिन उत्तरोत्तर अद्भुत आविष्कार हेाते जा रहे हैं।[11]

पुनर्जन्म का कारण

सामान्यतः संसार में जन्म होने का दो प्रमुख कारण होते हैं, यथा– क्लेशवश जन्म एवं परकल्याण हेतु करुणावश जन्म। बुद्ध एवं बोधिसत्त्वगण मुख्य रूप से जगत्कल्याण हेतु करुणावश संसार में जन्म लेते हैं। वे कमल पुष्प की भाँति संसार में जन्म लेने पर भी सांसारिक मल से निर्लिप्त रहते हैं। दूसरी ओर साधारण प्राणी मूलतः तृष्णा के कारण जन्म लेता रहता है। तृष्णा के तीन भेद होते हैं– काम–तृष्णा, भव–तृष्णा एवं विभव–तृष्णा। रूप, शब्द, गन्ध, रस एवं स्प्रष्टव्य जैसे पाँच गुणों के प्रति आसक्ति काम–तृष्णा कहलाती है। भव–तृष्णा वह तृष्णा है जहाँ व्यक्ति अज्ञानवश अपने

---

[7] दान से सम्पत्ति, शील से सुख; क्षान्ति से तेज युक्ता, वीर्य से ओजस्। ध्यान से शान्ति, मति से मुक्ति होगी और; करुणा से सभी अर्थों की सिद्धि होगी।।, **रत्नावली,** 5: 38।।; Once you acquire knowledge, then even though you die tomorrow and do not become wise in this life, you regain it in future births like wealth placed in trust. **Development of Awareness and Conduct,** 1966, [1:9]

[8] आचार्य सुमतिकीर्ति चोंखापा0 **नेयार्थनीतार्थविभंगशास्त्र सुभाषितसार**, सारनाथः केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, 1998, पृ0सं0 75 (भूमिका)

[9] पटुत्वहीनेऽपि मतिप्रभावे जडप्रकारेष्वपि चेन्द्रियेषु। विनोपदेशात्प्रतिपद्यते यत्प्रसूतमात्रःस्तनपानयत्नम्।। आहारयोग्यासु कृतश्रमत्व तद्दर्शयत्यस्य भवान्तरेषु। अभ्याससिद्धिर्हि पटूकरोति शिक्षागण कर्मसु तेषु तेषु च।।, **आर्यशूरकृतजातकमाला** में ब्रह्मजातक, श्लोक सं0 11–12

[10] आचार्य सुमतिकीर्ति चोंखापा0 **नेयार्थनीतार्थविभंगशास्त्र सुभाषितसार**, सारनाथः 1998, पृ0सं0 75 (भूमिका)

[11] दलाई लामा0 **बौद्ध सिद्धान्त सार,** सारनाथ : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, 1997, पृ0सं0 11

को, आत्मा को शाश्वत मानकर बैठ जाता है। जब व्यक्ति स्वयं को शाश्वत मानकर बैठ जाता है, तब स्व के साथ पर भी स्वतः खड़ा हो जाता है। इसके चलते क्रमशः अपने प्रति राग और दूसरों के प्रति द्वेष उत्पन्न करता है। इसके चलते समस्त दोषों की उत्पत्ति होती है[12] विभव–तृष्णा वह तृष्णा है जो यह मानती है कि व्यक्ति के मरने के बाद कुछ भी शेष नहीं रहता है, पूर्णतः नष्ट हो जाता है। जैसे– चार्वाक यह कहते हैं कि ऋण लेकर ही घी पीना चाहिये और जीवन को सुखमय बनाना चाहिये (यावज्जीवेत् सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पीवेत्.....)। इसप्रकार वे पुनर्जन्म, कर्मफल आदि का विरोध कर घोर पाप एवं अकुशल कर्म को करके दुर्गति[13] में पैदा होता है।

बौद्धों के अनुसार तृष्णा जनित हमारा यह शरीर नित्य नहीं है, बल्कि माता–पिता के शुक्र–शोणित और पूर्वजन्म के चित्त की सन्तति और वासना आदि के त्रिगुणात्मक सन्धि से बना है। यह शरीर क्रमशः भोजन, पानी आदि से वृद्धि को पाता है क्षख–क्षण परिवर्तन होता रहता है। यह शरीर करोड़ों अणुओं का संघात या पुंज मात्र है। शरीर एक दिखता है, किन्तु एक पिण्ड नहीं है। यह रेत की जमा राशि की तरह है। यदि रेत के राशि में पानी डालें तो, उसमें पानी प्रवेश कर जाता है, उसीप्रकार हमारा शरीर भी मात्र करोड़ों अणुओं का पुंज है। इसीलिये इसमें भी विद्युत् तरंग आदि का प्रवेश होता है। अतः शरीर के अन्दर के भागों का भी एक्सरे किया जा सकता है। हमारा शरीर क्षण–क्षण परिवर्तन होता हुआ असंख्य अणुओं का पुंज मात्र है। इसके कोई शाश्वत तत्त्व नहीं है। शरीर की तरह चित्त भी शाश्वत नहीं है। वह भी निरन्तर भिन्न–भिन्न संस्कारों के साथ भिन्न–भिन्न रूपों में प्रकट होता बहता रहता है। कभी सुखात्मक वेदना, कभी दुःखात्मक वेदना और कभी उपेक्षात्मक वेदना आदि के साथ प्रवाहित होता है। बहती गंगा के पानी की तरह चित्त सदा प्रवाहमान अवस्था में रहता है।

कोई पूछ सकता है कि प्रस्तुत व्यवस्था अनुसार यदि पूर्वजन्म अनादि है तो, हम अपने पूर्वजन्मों को क्यों स्मरण नहीं कर पाते हैं? इसपर अमेरिकन डॉ0 लान स्टीवनसन ने खोज की। वह 2500 से भी अधिक ऐसी घटनाओं से अवगत हुए जिसमें भिन्न–भिन्न व्यक्तिओं ने अपने पूर्वजन्म के सम्बन्ध में बातें कहीं, परिवार जनों को पहचाना, सम्पत्ति का ब्यौरा दिया आदि। सम्भवतः प्रायः व्यक्ति अपना पूर्वजन्म इसलिए भूल जाता है कि मृत्यु अत्यन्त पीड़ामय होती है। शरीर और मन का वियोग होना वह सहन नहीं कर पाती है। जैसे गाड़ी में बैठे व्यक्ति दुर्घटनाग्रस्त होने पर भय से अपनी स्मरण शक्ति खो देता है, किसी को पहचान नहीं पाता है; यहाँ तक कभी–कभी तो ऐसा भी होता है कि दुर्घटनाग्रस्त होने के कारण व्यक्ति कोमा में चला जाता है और उसे पुनः होश में आने के लिए वर्षों तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। उसीप्रकार हम सभी मृत्यु के भय से पूर्वजन्म की बातों को भूल जाते हैं। दूसरी ओर, जन्म लेते समय प्राणी को माता के अशुचि गर्भ में 9–10 माह रहना पड़ता है जिसके कारण वह बहुत कुछ भूल जाता है और जन्म लेने के बाद चारों ओर नया वातावरण उसको प्रभावित करता है। इससे भी पूर्व की घटनाओं को वह भूल जाता है। लेकि साधक अन्तराभव–मृत्यु की साधना करता है कि कैसे पृथिवीधातु जलधातु में विलीन होती है, जलधातु अग्निधातु में, अग्निधातु वायुधातु में और वायुधातु मनोधातु में। इस क्रम की साधना करने वाला निर्भय होकर मरता है और अपना पूर्वजन्म उसे याद रहता है। तिब्बत में ऐसे अनेकों उदाहरण मिलेंगे जिसने अपने पूर्वजन्म से सम्बन्धित घटनाओं को सूक्ष्मता से व्याख्या की है।

---

[12] आत्मनि सति परसंज्ञा स्वपरविभागात् परिग्रहद्वेषी।। अनयोः सम्प्रतिबद्धाः सर्वे दोषाः प्रजायन्ते।।, **प्रमाणवार्त्तिकः,** 1:121–122।।

[13] नरक, प्रेत एवं तिर्यक् (पशु), ये तीन दुर्गति कहलाते हैं।

यदि दूसरी दृष्टि से देखा जाये तो हमारे इसी जीवन के बचपन में जो घटना घटती है, वह 40–50 वर्ष के पश्चात् भी क्यों स्मरण आती है? यदि चित्त की सन्तति उस वासना एवं स्मृति के साथ प्रवाहमान न हो? मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि मस्तिष्क की कोशिकाएं यह कार्य करती है। जबकि वे हर क्षण बदलती रहती है तो, ऐसी स्थिति में वह कैसे स्मरण रहेगा? शरीर वैज्ञानिकों का कहना है कि 98 प्रतिशत कोशिकाएं प्रति वर्ष बदल जाती हैं, नया स्थान ले लेती है तो, 20 वर्ष पहले की घटना कैसे स्मरण करेगा? वही फिर सम्मोहन करने पर व्यक्ति अपने पूर्व जीवन के बारे में कहता है। यह कैसे सम्भव?

हम प्रायः गाँवों में देखते हैं कि व्यक्ति मरने के बाद किसी दूसरे व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर बातें करता है। वह कैसे सम्भव होगा यदि चित्त पूर्व कर्मों की वासना से संयुक्त न होता? यदि पूर्व जन्म के कर्मों का प्रतिफल नहीं होता तो, एक परिवार में एक ही माता–पिता की सन्तान जो एक ही परिवेश, एक पाठशाला में पढ़ा हो, उनमें अन्तर क्यों होता है। एक अत्यन्त दयालु, वहीं दूसरा अत्यन्त हिंसक। एक जन्म–जात अन्धा और दूसरा अविकल अंग वाला। क्या बुद्ध जो सत्य और अहिंसा की मूर्ति हैं, ने एक ही जन्म में इन गुणों को प्राप्त कर लिया है? नागार्जुन जैसा दार्शनिक, कालिदास और शैक्सपियर जैसे कवि, आईन्स्टाईन एवं मैडम क्युरि जैसे वैज्ञानिक क्या एक ही जन्म का परिणाम है? क्या उनमें पूर्वजन्म का कोई संस्कार नहीं था? पियानोवादक मोज़ारत छः वर्ष की आयु में वाद्य का मास्टर बन गया था; हेमिलटन ने आठ वर्ष की अवस्था में बारह भाषाओं पर अधिकार प्राप्त कर लिया था। ये सब कैसे सम्भव होता है? हमें इसपर गम्भीरता से सोचना चाहिए।

अपरजन्म

इसप्रकार हमने देखा कि पूर्वजन्म को जो चित्त है, उसके इस जन्म की चित्त सन्तति तक योग होने उसमें इस चित्त सन्तति के उत्पन्न करने में जो समर्थता है, वह इस जन्म के च्युतिचित्त में भी पूरी तरह निहित है। इसप्रकार च्युति द्वारा बाद की प्रतिसन्धि सिद्ध होती है। इसके आधार पर अपरजन्म के अस्तित्व की सिद्धि होती है।

निष्कर्ष

पूर्वजन्म एवं परजन्म के विषय में चर्चा करते समय एक प्रश्न बार–बार सामने उभर आता है और वह है कि आधुनिक युग को विज्ञान का युग कहलाता है। विज्ञान अपने आविष्कार द्वारा मनुष्य का जीवन बहुत ही सहज, सरल एवं सुखद बना दिया है। यदि विज्ञान की भूमिका द्वारा इतना कुछ सम्भव है तो, धर्म पालन करने की क्या आवश्यकता है? इसमें दो राय नहीं है कि आधुनिक विज्ञान भौतिक विकास के लिए एक महत्त्वपूर्ण एवं अविश्वसनीय भूमिका निभा रहा है। भौतिक विकास को किसी भी प्रकार से अशोभनीय नहीं कहा जा सकता है। परन्तु उसकी अनुपात में मानसिक विकास होना बहुत ही आवश्यक है। ऐसा होने पर ही भौतिक एवं मानसिक विकास के बीच एक सामंजस्य तैयार होगा। चूँकि मानव–जीवन, मनुष्य का व्यक्तित्व भौतिक विकास एवं मानसिक तत्त्व का समन्वय है, अर्थात् शरीर एवं मन का समन्वय, अतः इन दोनों में सामंजस्य रहना आवश्यक है। यह दोनों एक ही सिक्के की दो पहलु की तरह परस्पर निर्भरशील हैं। जब भी ही कोई असामंजस्य तैयार होगा, उसमें विश्रृंखला एवं भ्रम पैदा होगा। जिसप्रकार आधुनिक विज्ञान भौतिक विकास का पथप्रदर्शक है, ठीक उसीप्रकार मानसिक विकास के लिए तथागत बुद्ध का सद्धर्म अपरिहार्य है क्योंकि बुद्ध का सद्धर्म इसके लिए अनुकूल एवं हितकारी पथ–प्रदर्शन करने में सक्षम है। वास्तव में वर्तमान समय में भगवान बुद्ध का सद्धर्म सबसे प्रासंगिक भी है।

दूसरी ओर हमें जानना चाहिए कि हमारा वर्तमान जीवन ही सब कुछ नहीं है। इसी जीवन को सुखी और सम्पन्न बना लेने पर सारे कर्तव्य समाप्त नहीं हो जाते। भविष्य लम्बा है। पुनर्जन्म भी है। गन्तव्य मार्ग अत्यन्त दीर्घ है। अतः उन सभी जन्मों में सुख प्राप्ति करने के लिए एवं दुःखों का परिहार करने के लिए हमें उपाय खोजने होगें। अन्ततोगत्वा जीवन का परम उद्देश्य सुख एवं शान्ति को प्राप्त करना है। परन्तु लौकिक सुख की प्राप्ति ही पर्याप्त नहीं, इस जीवन के साथ ही लौकिक सुख की भी समाप्ति हो जाती है। उन जन्मों में भी जीवन सुखी रहे, इसके लिए उपाय करना चाहिए। यह कार्य धर्म के द्वारा ही सम्पन्न किया जा सकता है।

सामान्यतः विज्ञान की सहायता से मनुष्य जीवन में लौकिक सुख–शान्ति प्राप्त कर सकता है, लोकोत्तर सुख–शान्ति नहीं। और जीवन में लौकिक सुख–शान्ति प्राप्त करना पर्याप्त नहीं होता है क्योंकि जीवन के साथ–साथ लौकिक सुख–शान्ति समाप्त हो जाता है। चूँकि जीवन का गन्तव्य मार्ग सुदीर्घ है, अतः उन जन्मों में जीवन किसप्रकार सुखी रहे उसके लिए भी उपाय खोजनी होगी और यह धर्म द्वारा ही सम्भव है। जो लोग धर्म से अनभिज्ञ है, धर्म के आन्तरिक रहस्यों को अच्छी तरह नहीं जानते, वे अन्यान्य जन्मों के प्रति सन्देह करत हैं। वे समझत हैं कि वर्तमान जीवन में जो चेतना भासित होता है, वह इस दृष्ट काय पर सर्वथा आश्रित है। इस दृष्ट जीवन के अतिरिक्त इस जीवन का पूर्व–पर जन्मों से कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि उनकी दृष्टि में वस्तु की सत्ता के लिए उसका प्रत्यक्ष होना भी आवश्यक है। मृत्यु के समय काय चार महाभूतों में लीन हो जाता है और काय पर आश्रित चैतन्य आकाश में इन्द्रधनुष के समान विलीन हो जाता है। ये लोग कायाश्रयता के अतिरिक्त बुद्धि की स्वतन्त्र सत्ता नहीं मानते। मदकारक वस्तुओं से जैसे मद की शक्ति उत्पन्न होती है और उन दोनों में अभिन्नता होती है, वैसे ही मन काय से उत्पन्न है और उससे अभिन्न है। जैसे दीप का प्रकाश दीप का फल है, वैसे ही चित्त काय का फल है। मन काय का वैसे ही गुण है, जैसे भित्तिचित्र भित्ति का। इसप्रकार ये भौतिकवादी अपने विचारों को उपस्थित करते हैं। उनके उपर्युक्त कथन का दार्शनिक दृष्टि से सारांश यह है कि वर्तमान जन्म का चित्त सजातीय चित्तान्तर से उत्पन्न न होकर विजातीय अचेतन महाभूतों से उत्पन्न होता है।

इस सम्बन्ध में अन्य स्वभाववादी तार्किक लोग कहते हैं कि वस्तुओं की उत्पत्ति का कोई कारण नहीं है। कण्टक में जो तीक्ष्णता है, मयूर के पुच्छ पर जो वर्ण–वैचित्र्य है, उसे किसने बनाया है? इसके कर्ता को किसने देखा है? दानादि धर्म या अहिंसा का फल अच्छा ही होता है, यह किसने देखा है? संसार में कृपण का धनी होना, हिंसक का दीर्घायु होना भी देखा जाता है। वस्तुतः इन सबके बीच में कार्य–कारण के सम्बन्ध की कल्पना करना उचित नहीं है।

प्रमुख शब्द

महाभूतकाय, विप्रयुक्तसंस्कार, च्युतिचित्त, चित्त–सन्तति, पथ–प्रदर्शक

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची–

गेशे येशे थबखे अनु0). सुमतिकीर्ति चोंखापा. 1998. **नेयार्थनीतार्थविभंगशास्त्र सुभाषितसार.** सारनाथः केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान।

थुबतेन छोगडुब (अनु0). दलाई लामा. 1997. **बौद्ध सिद्धान्त सार.** सारनाथः केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान।

नरेन्द्र देव, आचार्य (अनु0). वसुबन्धु. 1986. **अभिधर्मकोश,** इलाहाबादः हिन्दुस्तानी एकेडेमी।

नेगी, गुरुचरण सिंह (अनु0 व सम्पा0). आर्यदेवः, 2018. **चतुःशतकम्.** नई दिल्लीः धी प्रकाशन।

नेगी, नोर्बू ग्यालछेन (अनु0). आचार्य नागार्जुन. 2018. **रत्नावली.** दिल्लीः ए0के0पब्लिकेशन।

नेगी, वंगछुक दोर्जे (अनु0). 2013. **धम्मपद.** , सारनाथः केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान

Lozang Jamspal (Ed.). Sakya Pandita. (1966), *Development of Awareness and Conduct (Treasury of Good Sayings)*. Ladakh Ratnashri Dipika, Leh.

Shastri, Dwarika Das. *Dharmakirti Nibandhawali: Pramāṇavārttika of Acharya Dharmakirtti with the Commentary "Vritti" of Acharya Manorathanandin. 1*. BBhS, Bhauddha Bharati Series 3. (1968), Bauddha Bharati.